Gyanvividha [A Peer Reviewed and Refereed Journal] March 2024 : Year-1, Vol-2 : PP-53-58

ज्ञानविविधा
रचना, आलोचना और शोध की त्रैमासिक पत्रिका

Online ISSN : 3048-4537
March 2024 : 1(2)53-58
©2024 Gyanvividha
www.gyanvividha.com

तुलसी कुमारी
सम्प्रति : सहायक प्राध्यापक (अतिथि)
इतिहास विभाग, श्री राधा कृष्ण गोयनका महाविद्यालय, सीतामढ़ी, बिहार

Corresponding Author :
तुलसी कुमारी
सम्प्रति : सहायक प्राध्यापक (अतिथि)
इतिहास विभाग, श्री राधा कृष्ण गोयनका महाविद्यालय, सीतामढ़ी, बिहार

प्रखर समाजवादी आचार्य नरेन्द्र देव

प्रस्तावना :

भारत की सामासिक संस्कृति को ठोस और समृद्ध बनाने वाले महापुरुषों में आचार्य नरेन्द्र देव का नाम अग्रगण्य है। वे जीवनपर्यंत भारत में सच्ची समतामूलक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए प्रयत्न करते रहे। उन्हें 'भारतीय समाजवाद' का जनक कहा जाता है। नरेन्द्र देव ने समाजवाद को सैद्धांतिक रूप के बजाय व्यवहारिक रूप में लागू किया। समाज में अनेक स्तरों पर व्याप्त विषमता को मिटाकर एक प्रगतिशील, प्रबुद्ध समाज का निर्माण करने तथा समृद्ध समाजवाद की स्थापना का श्रेय इन्हीं को जाता है। वह सही मायने में भारत के लोकतांत्रिक समाजवाद के पुरोधा थे। उनका मानता था कि "कोई भी सामाजिक-राजनीतिक, आंदोलन किसान, मजदूर तथा आम आदमी की सक्रिय भूमिका के बिना सफल नहीं हो सकता है।"[(1)] सर्वविदित है कि सन् 1857 ई० के स्वाधीनता आंदोलन की विफलता का यही एकमात्र कारण था कि इस आंदोलन में अंग्रेजों के खिलाफ मुट्ठीभर भर सिपाही लड़ रहे थे। इसलिए अंग्रेजों ने इसे 'सिपाही विद्रोह' कहकर कुचल डाला। अगर इस लड़ाई में देश के किसान-मजदूर सम्मिलित हो जाते तो, संभवत: भारत को उसी समय आजादी मिल जाती।

आचार्य नरेन्द्र देव विद्वान विचारक, समाजवादी नेता तथा क्रांतिकारी होने के साथ- साथ दार्शनिक एवं शिक्षाविद् भी थे। उनके व्यक्तित्व में कतिपय ऐसे अद्वितीय गुण समाहित थे, जो बेहद प्रशंसनीय हैं। वह राजनेता के बीच विद्वान और विद्वानों बीच में राजनेता थे। राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता में उनका अगाध विश्वास

था। उन्होंने मानव-सभ्यता और संस्कृति में एक नवीन युग की परिकल्पना की थी। आचार्य नरेन्द्र देव ने भारत को एक नया राजनीतिक और सामाजिक दर्शन प्रदान कर, भारत मे 'लोकतांत्रिक समाजवाद' को जन्म दिया।

आचार्य नरेन्द्र देव का जीवन परिचय :-

आचार्य नरेन्द्र देव, श्री बलदेव प्रसाद और श्रीमती जवाहर देवी के दूसरे सुपुत्र थे। उनका जन्म-31 अक्टूबर, 1989 ई. को उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिले में हुआ था। उनके माता- पिता मूलत: सियालकोट, पंजाब के निवासी थे, लेकिन बाद में वे फैजाबाद में आकर बस गये थे। उनके पिता बाबू बलदेव प्रसाद न केवल एक प्रतिष्ठित वकील, बल्कि समाज के एक प्रमुख व्यक्ति थे और भारतीय संस्कृति के जीवंत प्रतीक थे। अचार्य जी ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता के देख- रेख में ही प्राप्त की। उन्हें 13 वर्ष की अवस्था में सातवीं कक्षा में सन् 1906 में पहली बार विद्यालय में भर्ती कराया गया। प्रथम श्रेणी में अपनी हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात्, वर्ष 1911 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी, इतिहास, और संस्कृत विषयों के साथ प्रथम श्रेणी में स्नातक की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने बनारस में क्वीन्स कॉलेज से पुरालेख विद्या और पुरालिपि विद्या सहित संस्कृत विषय में एम.ए. की डिग्री 1913 ई. में प्राप्त की। उन्होंने पाली, प्राकृत, जर्मन और फ्रेंच आदि भाषाओं का भी अध्ययन किया। 1915 ई. में विधि (ला) में डिग्री प्राप्त की और शीघ्र ही एक सफल वकील के रूप में ख्याति अर्जित कर ली। परंतु असहयोग आंदोलन के दौरान गांधी जी द्वारा सरकारी शैक्षिक संस्थाओं और न्यायालयों के बहिष्कार का आह्वान किये जाने के बाद 1921 ई० में उन्होंने वकालत छोड़ दी और शिव प्रसाद गुप्ता द्वारा बनारस में स्थापित की गई राष्ट्रीय संस्था 'काशी विद्यापीठ' में नियुक्त हो गये। उनके जीवन में दो प्रवृत्तियाँ रहीं-एक, पढ़ने- लिखने की ओर और दूसरी, राजनीति की ओर। काशी विद्यापीठ का दायित्व उनके जीवन के दोनों उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हुआ। 1926 ई० में वे यहाँ के प्रचार्य बने और तभी से उनके नाम के आगे "आचार्य" शब्द स्थायी रूप से जुड़ गया। उनकी महान विद्वता, वाक्-पटुता और प्रतिभाशाली अध्यापन, नि:स्वार्थ चरित्र ही उनकी पहचान और प्रसिद्धि का आधार था। निष्ठापूर्ण चरित्र के फलस्वरूप एवं विद्यापीठ में किये गये नि:स्वार्थ सेवा से उन्होंने समाज पर गहरी छाप छोड़ी। यहीं रहते हुए उन्होंने मानव- जाति की अनेक समस्याओं का व्यापक अध्ययन किया। उनकी विलक्षण व तीक्ष्ण बुद्धि ने भांप लिया था कि शांतिपूर्ण क्रांति के माध्यम से ही समाज के मूलभूत ताने-बाने में परिवर्तन करके मानव जाति का भविष्य बेहतर बताया जा सकता है।

'आचार्य जी बालगंगाधर तिलक एवं अरविंद घोष की विचारों से वे काफी प्रभावित थे तथा उनकी रचनाओं ने उनके जीवन व दायित्वों में आमूलचूल परिवर्तन किया। काशी विद्यापीठ में नरेन्द्र देव 1921-37 ई० तक रहे, तथापि, इस महान संस्था के साथ वे जीवन भर जुड़े रहे।'[(2)]

आचार्य नरेन्द्र देव का राजनीतिक जीवन :

आचार्य नरेन्द्र देव हमारे देश के प्रमुख नेताओं में से एक थे। इलाहाबाद प्रवास के दौरान अपने आरम्भिक जीवन में वह बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चन्द्र पाल, अरविंद घोष और अन्य नेताओं से अत्यंत प्रभावित थे। वह 'वन्दे मातरम्' और 'आर्यावर्त' जैसे पत्रों के नियमित पाठक थे। लेकिन बाद में जब वह गांधी जी के सम्पर्क में आए तो उनसे और उनके विचारधारा से सर्वाधिक प्रभावित हो गये। सन् 1921 ई. के बाद जब तक उन्होंने कांग्रेस को नहीं छोड़ा, वह 'उत्तर प्रदेश प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी' और 'अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी' के सदस्य बने रहे। 1928 में वह 'इंडिपेंडेंस आफ इंडिया लीग' में शामिल हो गए। 1932 में 'अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी' की पूना में आयोजित बैठक में कांग्रेस के अंदर ही एक अलग 'सोशलिस्ट पार्टी' के गठन की आवश्यकता के बारे में चर्चा हुई थी। आचार्य जी का विचार था कि कृषक और श्रमिक वर्ग राजनीतिक आंदोलन का आधार बने। इस उद्देश्य हेतु 1934 ई. में पटना में एक सम्मेलन आयोजित किया गया था, जिसकी अध्यक्षता नरेन्द्र देव ने की। उन्होंने नई पार्टी का गठन किया, जिसका

नाम 'कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी' रखा। श्री जय प्रकाश नारायण को इसका पहला महासचिव बनाया गया था। नरेन्द्र देव जब तक जीवित रहे, पार्टी के प्रमुख सिद्धान्तकार और पार्टी के प्रमुख नेताओं में बने रहे।

वर्ष 1936 में आचार्य जी उत्तर प्रदेश विधान सभा के लिए निर्वाचित हुए, लेकिन उन्होंने कोई पद स्वीकार करने से मना कर दिया, क्योंकि वह स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन के चलते हुए किसी पद को स्वीकार करने के खिलाफ थे। लेकिन उन्होंने कांग्रेस सरकार को पूरे मनोयोग से सहयोग दिया खास तौर पर इसकी भूमि- सुधार की नीति के लिए और विभिन्न महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक समितियाँ, जो विश्वविद्यालय और निचले स्तरों पर शैक्षणिक सुधारों के लिए गठित की गई थी, के अध्यक्ष के रूप में काम किया।

1946 में वह उत्तर प्रदेश विधान सभा के लिए पुनर्निर्वाचित हुए और इस बार पुनः उन्होंने मंत्रिमंडल में शामिल होने से मना कर दिया। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि 1948 में जब पार्टी ने कांग्रेस से अलग होने का निर्णय लिया, नरेन्द्र देव और बारह अन्य सदस्यों ने विधान सभा की अपनी सीटों से त्याग पत्र दे दिया, जिसके लिए वह कांग्रेस के टिकट पर निर्वाचित हुए थे। उनके लिए आधारभूत मानदंड और आचार संहिता सदस्यता से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण थे। यह संसदीय लोकतंत्र की सर्वोच्च परम्पराओं का एक उदाहरण था। उसके बाद हुए उप- चुनावों में वे सभी हार गए। इससे कुछ समय पूर्व 1947 में उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति का पद ग्रहण किया था। इस पद पर वह 1951 तक बने रहे। जब उनके समक्ष बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति का पद स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा गया था और उन्होंने पद का कार्यभार संभाला। 1953 तक वह वहाँ इस पद पर रहे और बाद में अपने खराब स्वास्थ्य के कारण इस पद से त्यागपत्र दे दिया। वर्ष 1952 में और पुन: 1954 में उत्तर प्रदेश विधान सभा ने उन्हें राज्य सभा के सदस्य के रूप में चुना।

राजनीतिक क्षेत्र में गहन ज्ञान और विद्वता के मामले में आचार्य नरेन्द्र देव की तुलना केवल लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक से हो सकती है। आचार्य जी ने भारतवर्ष को एक नया राजनीतिक और सामाजिक दर्शन प्रदान किया। महात्मा गांधी के लिए उनके मन में असीम आदर का भाव था और वह गांधी जी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के प्रति पूरी तरह समर्पित थे। वह साध्य और साधन दोनों की शुचिता में विश्वास रखते थे।

समाजवाद और आचार्य नरेन्द्र देव :

आचार्य नरेन्द्र देव का समाजवाद में अटूट विश्वास था। समाजवाद के सभी स्वरूपों में से आचार्य नरेन्द्र देव कार्ल मार्क्स और उनके विचारों से काफी प्रभावित थे। वह कार्ल मार्क्स को एक महान सामाजिक वैज्ञानिक मानते थे। हालाँकि वह उन सभी बातों का समर्थन नहीं करते थे जो उस समय मार्क्स ने कही थी। रूसी और चीनी साम्यवाद की कतिपय प्रवृत्तियों ने उन्हें निराश किया और उनका यह विश्वास और अटल हो गया कि दुखी मानवता की उन्मुक्ति केवल लोकतांत्रिक समाजवाद में ही संभव है। उनके लिए समाजवाद केवल एक राजनीतिक या आर्थिक आंदोलन नहीं था, बल्कि एक नया दर्शन, एक नई जीवन- शैली, एक नई संस्कृति थी, जिसमें एक नई आचार संहिता थी। उनका विश्वास था कि "इससे एक ऐसे नए क्षितिज का साक्षात्कार होगा, जिसमें ग्रह-नक्षत्रों के बीच प्रकाश के स्पंदन की भाँति ही स्त्री और पुरुष अपने उदात्त और उत्कृष्ट विचारों और भावनाओं से एक -दूसरे को आलोकित कर सकेंगे और एक ऐसे समाज का निर्माण करेंगे, जिसमें घृणा, ईर्ष्या और शोषण का कोई नामोनिशान नहीं होगा।"[(3)] लोकतांत्रिक समाजवाद के बारे में उनके यही विचार थे।

आचार्य जी का विश्वास था कि समाजवाद से मानव व्यक्तित्व का मुक्त विकास होना चाहिए। उनका विश्वास था कि समाजवादी उद्देश्य ऐसे होने चाहिएं जिनसे सामाजिक प्रसन्नता में वृद्धि हो। व्यष्टिगत प्रसन्नता तो सामाजिक प्रसन्नता का अनिवार्य घटक है। इसलिए वह भारत के स्वतंत्रता संघर्ष को ऐसा क्रांतिकारी चरण मानते थे जिसमें भारतीय लोकाचार में जन्मा हुआ आंदोलन

हमारे समाज को शोषण रहित और समतावादी मूल्यों को समर्पित युग की और ले जाता हो।

भारतीय समाजवादी विचारधारा के लिए आचार्य जी का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान उनकी समाजवाद के दर्शन को मूलरूप से समृद्ध बनाने के लिए नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की अनिवार्यता की अवधारणा थी। उनका विश्वास था कि पूँजीवाद की राजनीतिक और आर्थिक प्रणाली में केवल ढांचागत परिवर्तन करने से वास्तविक समाजवादी समाज नहीं बन पाएगा। इसमें प्राण डालने हेतु सामाजिक मूल्यों की नैतिक और सांस्कृतिक अवधारणा की आवश्यकता है। समाजवादी नैतिकता की अवधारणा की स्थापना की आवश्यकता पर बल देते हुए प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के संदर्भ में उन्होंने लिखा था-

"स्वतंत्रता, समता और लोकहित समाजवादी नैतिकता के मूलभूत सिद्धांत हैं। संपूर्ण सभ्य विश्व में प्राचीन काल के ऋषियों, आचार्यों और पैगम्बरों, मध्यकाल के संतों और सूफियों और आधुनिक युग के पुनर्जागरणवादियों और क्रांतिकारियों के भी यही सिद्धांत थे। इनके आधार पर भारत में एक तरह का आध्यात्मिक मानववाद विकसित होने लगा. हमारा कर्तव्य है कि आध्यात्मिक मानववाद को धर्मतंत्रवादी प्रकृति के धार्मिक-सामाजिक मानदंडों से भिन्न करते हुए मानव स्वभाव के लोकतांत्रिक और समाजवादी मानदंडों के रचनात्मक संश्लेषण के माध्यम से समाजवादी नैतिकता का निर्माण करें।"[(4)]

आचार्य जी सच्चे समाजवादी समाज के निर्माण के लिए समाजवादी संस्कृति का दृष्टिकोण विकसित करने की बात बार-बार किया करते थे। उन्होंने लिखा था कि "समाजवाद केवल आर्थिक आंदोलन ही नहीं बल्कि यह एक सांस्कृतिक आंदोलन भी है। इसमें वास्तविक मानव संस्कृति के लिए भी उतना ही प्रयास किया गया है, जितना कि एक नई आर्थिक व्यवस्था के लिए।"[(5)]

नरेन्द्र देव भारत में लोकतांत्रिक समाजवाद के लिए जिस आदर्श का अनुकरण कराना चाहते थे। वह साम्यवादी देशों में प्रवृत्त मार्क्सवादी समाजवादी व्यवस्था से भिन्न था। आचार्य नरेन्द्र देव ने राजनीतिक और आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण की गांधीवादी अवधारणा को पूरे मन से स्वीकार किया था। वह भारत में जिस लोकतांत्रिक समाजवाद का अनुकरण कराना चाहते थे, उसकी मूल बातों को बताते हुए आचार्य जी ने यह भी लिखा था- "लोकतांत्रिक समाजवाद अधिकारों और दायित्वों के विकेन्द्रीकरण का पक्षधर है। इसमें विकेन्द्रीकरण को लोकतंत्र का आवश्यक घटक माना गया है तथा उसकी ऐसी दृढ़ मान्यता है कि एक लोकतांत्रिक केन्द्र से सभी लोक कार्य करने का प्रयास किया जाए तो वह विशाल अफसरशाही का केन्द्र बन जाएगी जिससे मुक्त लोकतांत्रिक जीवन असम्भवप्राय हो जाएगा..... विकेन्द्रीकृत लोकतंत्र होने से ही लोक कार्यों से जनता का सक्रिय जुड़ाव, अफसरशाही और एकदलवाद की बुराई से मुक्त समाज और उचित लोकतांत्रिक माहौल उत्पन्न होना सुनिश्चित हो सकता है तथा प्रशासन इन सीधे-सीधे संबंधित सभी व्यक्तियों की आवश्यकताओं और विचारों पर प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकता है।"[(6)]

अध्यात्म और मानववाद के उच्च आदर्शों के अनुरूप और भारतीय परंपरा जो गांधी जी तक पहुंची, उसे गहराई से आत्मसात करके आचार्य देव की समाजवाद को के रणनीति में हिंसा के लिए यथासंभव कोई स्थान नहीं था। वह इस बात के प्रति आश्वस्त थे कि जन समर्थन प्राप्त क्रांतिकारी आंदोलन मूलतः अहिंसक होता है। उनके अनुसार वास्तविक क्रांति तभी आ सकती है जब अधिकांश जनता सक्रिय रूप से उसके लिए तैयार हो। ऐसे आंदोलन में शक्ति सैन्य बल से नहीं, अपितु राजनीतिक बल से प्राप्त होती है, जिसका अर्थ है -जनता का संगठित संकल्प। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से गांधी जी के अहिंसा सिद्धांत को आचार्य नरेन्द्र देव की विचारधारा में अभिव्यक्ति मिलती है।

आचार्य नरेन्द्र देव का समाजवाद उनके दीर्घ अध्ययन और मनन पर आधृत था। उनके अनुसार-"समाजवाद पाश्चात्य व्यक्तिवाद की प्रतिक्रिया से निकला हुआ एक दर्शन है, इसलिए उसमें इतना ही विचार मिल पाता है कि पाश्चात्य व्यक्तिवाद के मूल्य कितने सदोष है। समाजवाद नये युग का शुभ संदेश और मानव स्वतंत्रता की कुंजी है।"[(7)] यही सोचकर नरेन्द्र देव समाजवाद को एक

सार्वभौम सिद्धान्त और सारे संसार में ऐतिहासिक विकास को भावी चरण- विन्यास मानते थे। उनकी सम्मति में 'विभिन्न देशों में इस सार्वभौम सिद्धान्त का प्रयोग उनकी विशेष परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए।'[8] अतएव, वे ठीक ही सोचते थे कि भारतीय समाजवाद को वर्ग और जाति के दो प्रतिद्वन्द्वियों का एक साथ सामना करना होगा।

आचार्य जी की दृष्टि में जीवन और समाज का स्वरूप केवल देशबन्धुत्व और देश- सेवा से ही सम्बंधित न होकर विश्व-बन्धुत्व और विश्व-कल्याण की भावनाओं से सम्बधित होना चाहिए। वे कभी भी केवल राष्ट्रीय प्रश्न पर विचार करने के पक्ष में न थे, ऐसी स्थिति में उनकी सोच थी कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चिंतन किया जाय। वह विश्व-स्तर के लोकतांत्रिक अन्तर्राष्ट्रीय समाज की स्थापना की सोच करते थे। इसलिए समता, स्वतंत्रता और सहकारिता को आधार बनाये जाने का उनका विचार था। वे पूर्ण विश्वास के साथ कहते थे कि मानव का विकास 'वसुधैव कुटुम्बकम' की परम्परानुसार ही कबीले, बिरादरी, जाति और धर्म तथा राष्ट्र के स्तरों से गुजरता हुआ अन्तर्राष्ट्रीय समाज के युग में प्रविष्ट होने के साथ हुआ है।

नरेन्द्रदेव की महती इच्छा थी कि सब जातियों और सम्प्रदायों के लोग संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठकर राष्ट्रीयता के रंग में रंग जायें और देश को सबका हिन्दुस्तान समझे एवं सब की उन्नति के अवसर के प्रति सहानुभूति रखें। वे मानते थे कि 'राष्ट्रीयता धर्म के भेदों से परे है, देशभक्ति और देशबन्धुत्व की भावनाएँ भी राष्ट्रीयता की आधार हैं।'[9] वे जातिवाद और साम्प्रदायिकता के साथ-साथ प्रांतीयता और भाषावाद को भी देश का अभिशाप समझते थे तथा अन्तः प्रांतीय सौहार्द और देशबन्धु पर आश्रित राष्ट्रीय भावना पर बल देते थे। इसलिए राष्ट्रीयता और समाजवाद के क्षेत्र में उनके इतिहास-दर्शन को आज भी पर्याप्त आदर प्राप्त है। एशियाई राष्ट्रीयता के इतिहास में उनकी अत्यधिक रूचि थी। व्यक्तिगत सक्रिय सहयोग से प्रभावित भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की उनकी विवेचना वास्तव में इतिहास का दर्शन और भारतीय संस्कृति के ही रूप थी। वे कहा करते थे कि राष्ट्रीयता की भावना सम्पदायों से ऊपर होती है। लोकतंत्र को वे अपने समाजवाद के लिए आवश्यक मानते थे और कहते थे कि जनतंत्र को पृथक रखकर समाजवाद की कल्पना नहीं हो सकती। अधिकनायत्व को समाप्त करने के लिए लोकतंत्र को आवश्यक बतलाते हुए नरेन्द्रदेव जी कहते थे कि लोकतंत्र केवल एक शासन-पद्धति नहीं है, अपितु वह एक जीवन प्रणाली है। लोकतंत्र की स्थापना के लिए सत्य को आधार बनाये जाने की आवश्यकता होती है। क्योंकि इसकी जड़ें जनता में होती है, अतएव आवश्यकता इस बात की है कि सत्य से किसी प्रकार समस्त जनता को अवगत कराया जाय। उनका कहना था कि लोकतंत्र का अर्थ सामान्यजन के प्रति उदार और उसकी विधायक शक्ति में विश्वास है तथा समता, स्वतंत्रता, सहकारिता और निष्पक्ष न्याय उसके प्राण हैं। किन्तु इसमें प्रशंसक और विरोधी, दोनों ही पक्षों का सुदृढ़ होना आवश्यक होता है, क्योंकि लोकतंत्र में स्वस्थ रचनात्मक विरोधी दल के अभाव में शासन निरंकुश और भ्रष्ट हो जाता है

आचार्य नरेन्द्रदेव की भूमिका प्रजातांत्रिक समाजवाद की यात्रा की रीढ़ थी। दार्शनिक धरातल पर आचार्य नरेन्द्रदेव बौद्ध दर्शन से प्रतीत्य समुत्पाद और समाज परिवर्तन के धरातल पर वर्ग संघर्ष का सहमेल स्थापित कर भारतीय मनीषा के अनुरूप समाजवाद की पुर्नव्यवस्था दी थी। आचार्य जी के वर्ग-संघर्ष, परायापन और शोषण सम्बंधी मार्क्सवादी व्याख्याओं से समाजवादी आन्दोलन का वास्तविक मानचित्र बनाया जा सकता है। दरअसल, आचार्य नरेन्द्रदेव ने मार्क्सवादी दृष्टि से विश्लेषण कर भारतीय समाजवाद की यात्रा को यथार्थ के करीब ले जाना चाहते थे।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त वर्णन- विवेचन तथा विश्लेषण से यही निष्कर्ष सामने आता है कि आचार्य नरेन्द्र देव ने जिस प्रजातांत्रिक समाजवाद की स्थापना की, वह सैद्धांतिक और व्यावहारिक दृष्टि से अत्यंत प्रगतिशील है। इस समाजवाद में मार्क्स और गांधी के उदात्त विचारों का सम्यक् संयोजन है। यह समाजवाद तमाम विरोधाभासों का निषेध करते हुए समाज के सभी जातियों, वर्गों और धर्मों के हित की कामना

करते हुए 'बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय' पर बल देता है। निश्चय ही आचार्य नरेन्द्र देव का समाजवाद देश और काल की सीमा से परे आज भी भारत के चहुंमुखी विकास के लिए प्रासंगिक है।

संदर्भ- ग्रंथ सूची :

(1) राष्ट्रीयता और समाजवाद-आचार्य नरेन्द्र देव, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 1938 ई., पृष्ठ- 7

(2) समाजवाद- संपूर्णानंद, काशी विद्यापीठ, बनारस, संवत् -2004, पृ- 127

(3) समाजवाद के नये चरण- प्रकाशन विभाग, भोपाल, 1971 ई., पृष्ठ- 93-94

(4) भारतीय समाजवादी आन्दोलन- चन्द्रोदय दीक्षित, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1970 ई., पृ- 112

(5) वही, पृष्ठ -115

(6) समाजवाद और राष्ट्रीय क्रांति-आचार्य नरेन्द्र देव, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा,1946 ई., पृष्ठ- 48

(7) आचार्य नरेन्द्र देव : जीवन और सिद्धांत- मुकुट बिहारी लाल, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली,1966 ई., पृष्ठ- 87

(8) वही, पृष्ठ- 226

(9) वही, पृष्ठ- 301